नियमसार, 'जीव अधिकार' तीसरी गाथा। ज्ञान किसे कहना? दर्शन किसे कहना? और चारित्र किसे कहना? जो मोक्ष का मार्ग है, उसकी व्याख्या है। दर्शन-ज्ञान और चारित्र। यहाँ **ज्ञानदर्शनचारित्र** ऐसा लिया है। ज्ञान की मुख्यता ली है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र, यह मोक्ष का मार्ग है। उसका फल मोक्ष है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहना किसे?

(१) परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना... परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, चाहे तो शास्त्र-अकेले पृष्ठ हो, या अन्दर विकल्प हो, वह सब परद्रव्य है। उसका अवलम्बन छोड़कर, उसका लक्ष्य छोड़कर **निःशेषरूप से अन्तर्मुख योगशक्ति में उपादेय ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान सो ज्ञान है।** यह शब्द हुए। अब

निःशेषरूप से... की व्याख्या कोष्ठक में सम्पूर्णरूप से आयी है। देखो! कोष्ठक है न? कोष्ठक। निःशेषरूप से अर्थात् सम्पूर्णरूप से। योगशक्ति में से (अर्थात्) उपयोग को यहाँ गिना है। योगशक्ति में से - इसे उपयोग गिना है। चन्दुभाई! बात अधिक स्पष्ट आयी है।

मुमुक्षु : कोष्ठक में उपयोग पहला शब्द है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह योगशक्ति का अर्थ कया है और अन्तर्मुख, यह बाद में अर्थ किया है। **(उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य)...** यह शब्दार्थ है। अर्थात् कि सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख उपयोग को जोड़ने से जो दशा प्रगट हो, वह उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य है। ऐसे भाव को ज्ञान कहा जाता है। फिर से, हों! एकदम झट छोड़ नहीं दिया जाता। अस्ति-नास्ति की है। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर, स्वद्रव्य में अपने उपयोग को अन्तर्मुख करना, सम्पूर्ण रूप से अन्तर्मुख करना, ऐसा।

ऐसा जो निज परमतत्त्व... देखो! यह आया। निजपरमतत्त्व जो त्रिकाल ध्रुव, ज्ञायकभाव, उसको जानना, वह ज्ञान है। समझ में आया? फिर से, मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्ज्ञान, किसे कहना? गुरु ने कहा, शास्त्र ने कहा, ज्ञानी की वाणी वीतराग की दिव्यध्वनि सुनी और ज्ञान हुआ, वह ज्ञान? नहीं; वह ज्ञान नहीं। वह ज्ञान स्वयं से हुआ है। दिव्यध्वनि, शास्त्र और गुरु की वाणी तो निमित्त है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो दूसरा कहना है अभी। वह निमित्त है, तथापि यहाँ जो ज्ञान होता है कि यह ऐसा कहते हैं... यह ऐसा कहते हैं, वह ज्ञान स्वयं से होता है परन्तु वह ज्ञान, ज्ञान नहीं, क्योंकि जिसमें अभी परद्रव्य का निमित्तपना था। समझ में आया? ऐसी जो ज्ञान की पर्याय अन्तर में क्षयोपशमरूप हो, वह नहीं। वह ज्ञान नहीं। आहा..हा..! ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो योग-जो आत्मा का जुड़ानभाव उपयोग। त्रिकाल वस्तु जो ध्रुव परमतत्त्व। यहाँ है न? **निज परमतत्त्व...** अपना परमतत्त्व। सर्वज्ञ ओर देव-गुरु का नहीं। समझ में आया? प्रभु!

निज परमतत्त्व का... योगशक्ति को अन्तर्मुख सम्पूर्णरूप से करने से, ग्रहण करनेयोग्य। **ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना), सो ज्ञान है।** चर्चा हुई है तो बराबर अन्दर स्पष्ट होना चाहिए न! वजुभाई!... गये हैं। कल इन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि

कोष्ठक में लिखा है, वह बराबर है। क्योंकि यदि इसमें ऐसा लें कि योगशक्ति अर्थात् त्रिकाल, तो वह तो गुणभेद पड़ा। गुणी और गुणभेद, यह व्याख्या दूसरे दो में नहीं है। इसलिए इसमें ऐसा कहे, वह इसमें बराबर समुचित नहीं है। नवरंगभाई! समझ में आया? आहा..हा..!

विकल्प को अथवा शास्त्र को सुनकर देव-गुरु को सुनकर उन्होंने कहा, ऐसा जो ज्ञान, वह भी वास्तव में परद्रव्य है। उसके अवलम्बन बिना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो जिसे सम्यग्ज्ञान कहें - मोक्ष का मार्ग, वह ज्ञान तो अलौकिक वस्तु है। **निज परमतत्त्व...** अपना जो परमतत्त्व। यह तो भाई! रात्रि को था न, उसमें से विचार आया था कि निर्ग्रन्थ तो अनन्त ज्ञान की उपासना करते हैं, एक ग्रन्थ की नहीं। इसका अर्थ? अनन्त बेहद ज्ञानस्वभाव निज परमतत्त्व की उपासना निर्ग्रन्थ करते हैं।

मुमुक्षु : वह अनन्त ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अनन्त ज्ञान। आहा..हा..!

मुमुक्षु : बहुत ग्रन्थों की करे वह नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। भाई! ऐसा नहीं। भाई! तू विरोध में पड़ेगा। आहा..हा..! एक समय की पर्याय का भी नहीं। वस्तु है न? वस्तु, जिसका स्वभाव तो अनन्त है। स्वभाव है, उसकी हद क्या होगी? ऐसा बेहद जो अनन्त ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी उपासना, वह सन्तों का कार्य है। समझ में आया? अनादि सर्वज्ञ परमात्मा, सर्वज्ञस्वभाव को पहले विकास किया। सर्वज्ञ हुए।

निज परमतत्त्व... निज परमतत्त्व अर्थात् परमस्वभाव जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है। समझ में आया? अपना परमस्वभाव। परमतत्त्व शब्द है न? अपना परमभाव, स्वभावभाव, नित्यभाव, एकरूप भाव, ध्रुवभाव, ज्ञायकभाव, उसे उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके जो दशा प्रगट हो, वह ग्रहण करनेयोग्य है और उसे ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? अभी तो बात पकड़ना (कठिन पड़ती है)। पोपटभाई! शान्तिभाई!

यह मोक्ष के मार्ग का कारणरूप ज्ञान, वह किसे कहना? यह व्याख्या चलती है। परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर, उस परद्रव्य में सब आ गया। देव-गुरु-शास्त्र, विकल्प और परद्रव्य के लक्ष्य से हुआ ज्ञान। भले अपना उपादान (से हुआ), उसका भी अवलम्बन छोड़कर समझ में आया। **सम्पूर्णरूप से...** सम्पूर्णरूप से उपयोग को अन्तर्मुख करने से।

अर्थात् ? कि जो वर्तमान उपयोग है, उसका कोई अंश बाह्य रह जाये और कोई अन्तर में (रहे), ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह बात अलग। यह तो अभी मोक्षमार्ग की शुरुआत की है।

नियमसार। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग; सार अर्थात् व्यवहाररहित। व्यवहार के विकल्परहित। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत के विकल्प हैं, उस व्यवहाररहित। सहित नहीं। उसे नियमसार कहते हैं। इस नियम में तीन प्रकार—ज्ञान, दर्शन और चारित्र। उनमें ज्ञान पहला मोक्ष का मार्ग। वह ज्ञान, परद्रव्य का बिल्कुल अवलम्बन छोड़कर... भाई! पहले सुना था। उसके अवलम्बन से कुछ लाभ होगा या नहीं ? ऐई! नवरंगभाई! ऐई! भीखाभाई! भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : यह पकड़ने जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे पकड़ने से ?

मुमुक्षु : ज्ञानस्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! कहते हैं कि जहाँ सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा स्थित है, निज परमतत्त्व है न ? परमस्वभाव, ज्ञायक त्रिकाल भाव में वर्तमान ज्ञान के उपयोग को परद्रव्य के किसी भी अवलम्बन से छोड़कर, भगवान ऐसा कहते थे और भगवान की वाणी ऐसा कहती थी, ऐसा जो जाना हुआ, वह भी छोड़कर। नवनीतभाई!

मुमुक्षु : भावेन्द्रियों को छोड़कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावेन्द्रिय का ज्ञान था वह तो। आहा..हा..! ऐसी वस्तुस्थिति है। लोगों को खबर नहीं होती और दूसरे को साथ में मिलाते हैं। कहो, चेतनजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...सम्पूर्णरूप से उपयोग को यहाँ झुकाना। जरा भी बाहर में है, उसे छोड़कर (यहाँ झुकाना)। आहा..हा..! गजब टीका की है न! ये तो मुनि हैं, हों! यह स्वयं टीका करनेवाले आचार्य नहीं हैं। श्लोक आचार्य के हैं और टीका मुनि की है। परन्तु मुनि, वे मुनि हैं न! आहा..हा..! पंच परमेष्ठी में शामिल हैं, शामिल हैं और वह भी पहले कहा है न ? भाई! यह टीका हमने कहाँ की है ? हम मन्दबुद्धि क्या करें ? गणधरों से बनायी

हुई यह टीका चली आ रही है। आहा..हा..! पहले आया है न? शुरुआत में। पाँचवाँ श्लोक है न? **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन?** आहा..हा..! यह अर्थ तो गणधरों से चला आ रहा है। परम्परा से श्रुत के धारकों ने यह अर्थ किया था। वह अर्थ इसमें होता है। आहा..हा..! समझ में आया? पाँचवाँ श्लोक है। ऐई! देवानुप्रिया! वहाँ फिर भटके बहुत वर्ष, दूर हो गये। कितने वर्ष हो गये? १२। कितने हुए? १३ वर्ष हुए। आहा..हा..! भगवान! यह वस्तु, वह भी वस्तु देखो न! भगवान स्वयं आत्मा निज परमात्मा कहा न? वह प्रत्येक शब्द में अलग-अलग प्रयोग करते हैं। यहाँ निजपरमात्मतत्त्व; दूसरे में निज शुद्ध जीवास्तिकाय; तीसरे में कारणपरमात्मा। प्रत्येक में द्रव्य प्रयोग करेंगे, गुणभेद नहीं। वजुभाई! समझ में आया? शब्दों को स्पर्श कर विचार करे और सुने, समझे तो बराबर ठीक पड़े।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो इसे ठीक पड़े कि आहा..हा..! अध्धर से ऐसा का ऐसा पढ़े और ऐसा का ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : तो ही महिमा आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो महिमा आवे। इसे ख्याल आवे कि ओहो..! इस परमागम के यह भाव! यह तो परमागम है। टीका वह परमागम है। अन्दर आगे कह गये हैं न? हमारे मुख में से परमागम झरता है। आता है न? आहा..हा..!

मुमुक्षु : मकरन्द झरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जैसे फूल का रस झरता है न? भँवरा उस फूल का लेता है न.... क्या कहलाता है? पराग। भँवरा फूल में से पराग चूसता है न? इसी प्रकार यह परमागम का पराग है यह सब। रस है, रस। समझ में आया? थोड़ा भी सत्य और परम दृढ़ होना चाहिए। लम्बी-लम्बी बड़ी बातें करे, उसका अर्थ कुछ है? कहते हैं... यह तो जरा कोष्ठक के शब्दों को भी सबेरे मिलाया, हों! चन्दुभाई ने प्रश्न किया था, उसमें से यह सब लम्बा चला। तो ही चिकना होता है न अधिक, स्पष्टता होती है न। आहा..हा..!

परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना... परद्रव्य शब्द से देव-शास्त्र-गुरु, उनकी

ओर का विकल्प, उनकी ओर का हुआ अपना ज्ञान, वह सब परद्रव्य है। उसका लक्ष्य छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर, उस पर जो दृष्टि पड़ी है, उसे वहाँ से उठाकर **निःशेषरूप...** अर्थात् सम्पूर्णरूप से **अन्तर्मुख योग...** अर्थात् उपयोग में से **उपादेय...** उस उपयोग में से निकली हुई जो दशा, वह आदरणीय है। **ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान...** आहा..हा..! **ऐसा जो निज परमतत्त्व...** परमज्ञायकभाव भगवानस्वरूप का ज्ञान। वह भी ज्ञान शब्द प्रयोग नहीं किया। परिज्ञान (कहा है)। यह कोष्ठक में संक्षिप्त जानना किया है। **सो ज्ञान है।** उस ज्ञान को मोक्ष के मार्ग का कारण कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ तो ये सब भगवान की टोकरी बजावे और वांचे-फाचे तो यह ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। प्रेमचन्दभाई! गजब बात! अभी लोगों के कान में नहीं पड़ी हो, वे बेचारे कहें, परावलम्बी बात में पड़े हैं और मानते हैं कि हम कुछ करते हैं। आहा..हा..! स्वावलम्बीरहित ज्ञान को भगवान ज्ञान नहीं कहते। समझ में आया? यह तो जिसे...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब परिज्ञान... सब परिज्ञान।

मुमुक्षु : ज्ञान में क्या अन्तर पड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ अन्तर नहीं पड़ता। स्व को पकड़ता है, इतना बस। ज्ञान कम हो, अधिक न हो, उसका कुछ नहीं। स्थिरता बढ़ती है।

मुमुक्षु : ज्ञान में कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। किसी को विशेष ज्ञान भले हो परन्तु ज्ञान की वह विशेषता नहीं है। स्व को पकड़ने की जो लब्धि है, वह है, बस! हो गया।

मुमुक्षु : स्थिरता में अन्तर, ज्ञान में अन्तर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ अन्तर नहीं। वह तो विशेष भावश्रुतज्ञान हो, उसके समकित को विशेष दृढ़ता कही है न? अवगाढ़ समकित कहा है न? दस सम्यक्त्व में। ज्ञान के भेद में दो लिये हैं। एक श्रुतज्ञान की तीव्रता हो अन्दर की, वह समकित और केवलज्ञानी, ऐसे दो लिये हैं, दो अपेक्षा से। लो यह ज्ञान, मोक्ष के मार्ग का ज्ञान। कितना पढ़े तो यह ज्ञान हो? ऐ प्रकाशदासजी!

मुमुक्षु : प्रभु जो समझाते हैं, वैसा ज्ञान हमारे पकड़ में आवे तो बात.... बाकी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो परद्रव्य के अवलम्बन बिना कहा है।

मुमुक्षु : यह बात तो ऐसी ही है परन्तु यह तो व्यवहार से.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो व्यवहार के अवलम्बन का निषेध है। यह तो वीतरागी ज्ञान है। वह ज्ञान है, परन्तु वीतरागी ज्ञान है। जिसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं। यह पहले आ गया है। परमनिरपेक्ष मोक्षमार्ग। आहा..हा..! शुद्धरत्नत्रय। नियमसार में भी गजब बातें की हैं! तीन शास्त्र तो बाह्य में प्रसिद्ध थे—समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय। नियमसार गुप्त था, वह बाहर आया। श्रीमद् को यह मिला नहीं। नियमसार और पंचाध्यायी, दो नहीं मिले। टोडरमलजी को नियमसार मिला है, भाई! हमने टीकासहित पढ़ा है-ऐसा लिखा है। नियमसार टीका की बातें आती हैं।

कहते हैं, इस ज्ञान को मोक्ष के मार्गरूप से.... अर्थात्? बन्धन को छूटने का यह ज्ञान, वह ज्ञान है। दूसरे ज्ञान तो बन्धन के कारण हैं। समझ में आया?

अब सम्यग्दर्शन। दर्शन-सम्यग्दर्शन, परम श्रद्धा किसे कहना? **भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी...** इसका जो कलश लेंगे, उसमें तो रत्नत्रय का आश्रय करके, ऐसा भी कहेंगे। कलश में (कहेंगे)। वह तो प्रगट करना है न, इस अपेक्षा से (बात है)। बाकी उसका आश्रय नहीं है, परन्तु आश्रय का अर्थ ही उसका आश्रय करने जाये तो उसका द्रव्य पर आश्रय जाये। निर्मल पर्याय उसे पकड़े, वहाँ किस प्रकार पकड़ सके? द्रव्य पर जाये तब निर्मल पर्याय प्रगट हो। समझ में आया? नीचे अर्थ है। इस टीका का कलश है। समझ में आया? इस टीका का ही कलश है, तथापि रत्नत्रय का आश्रय करके, ऐसा वहाँ कहते हैं। इसका अर्थ कि निर्मल पर्याय प्रगट करके मुक्तिरूपी स्त्री को वरते हैं।

भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को... आहा..हा..! यह भगवान आत्मा अपना, इसका जो अन्तर आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान आत्मा, ऐसे परम **सुखाभिलाषी जीव को...** ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द भगवान परमात्मा का सुख, उसके अभिलाषी जीव को। नहीं सुख कहीं स्त्री में, नहीं पैसे में, नहीं स्वर्ग में, नहीं इज्जत में, नहीं मकान में, नहीं उसके विकल्प में अथवा नहीं उसकी एक समय की बाहर की विकसित पर्याय में। ऐसा भगवान परमात्मा स्वयं है। उसके अतीन्द्रिय आनन्द का अभिलाषी। जिसे दुनिया की किसी भी अनुकूलता की सुविधा में उल्लसित वीर्य नहीं होता। कहीं जिसे

बाह्यपदार्थ के प्रति कोई सूक्ष्म दौड़ में भी ठीक है, ऐसा नहीं लगता। वह परमात्मा-भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का अभिलाषी होता है। समझ में आया?

भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को शुद्ध अन्तःतत्व के विलास का जन्मभूमिस्थान.... भाषा तो कैसी की है! देखो! शुद्ध अन्तःतत्त्व, भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान आत्मा। आहा..हा..! शुद्ध अन्तःतत्त्व, शुद्ध अन्तःस्वभाव, उसके **विलास का जन्मभूमिस्थान....** उसके आनन्द का, मौज का, क्रीड़ा का, उत्पत्ति का भूमिस्थान **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** उसमें निज परमतत्त्व कहा था। इसमें **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** निज शुद्ध जीव भी नहीं लिया। क्योंकि यहाँ तो सर्वज्ञ ने कहा हुआ जीव, वह अस्ति है, असंख्य प्रदेशी है। समझ में आया? आहा..हा..!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ जो आत्मा, तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ, वह शुद्धजीव असंख्य प्रदेशी अस्तिकाय है। है परन्तु असंख्यप्रदेशी है। पण्डितजी! आहा..हा..! देखो न यह टीका! अब इस टीका को अभी कितने ही लोग मान्य नहीं रखते। ऐसी अपनी पण्डिताई के अभिमान (चढ़ गये हैं)। आहा..हा..! भगवान! क्या करें? तेरी दृष्टि को मेल न खाये, इसलिए खोटा है, ऐसा कैसे कहा जाये? बहुत कठिन लगे। ऐसा कि क्लिष्ट टीका की है... परन्तु क्लिष्ट की है या रस बहाया है ऊँचा? स्पष्ट कर दिया है। स्पष्ट। क्या हो? जगत में अनेक... अनेक अभिप्राय-शल्य जगत में है। उसमें यहाँ यह अन्तर में आना, ऐसा जो अभिप्राय होना, वह महापुरुषार्थ है। प्रभु! समझ में आया? बाहर के वे देखने जावे तो कुछ पार आवे, ऐसा नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि, **शुद्ध अन्तःतत्व...** फिर देखा! अन्तर का शुद्ध अन्तःस्वभावभाव, उसके आनन्द की उत्पत्ति भूमिस्थान, ऐसा **जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...**

मुमुक्षु : अन्तःतत्त्व कहा, उसे जीवास्तिकाय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे जीवास्तिकाय (कहा)। शुद्ध अन्तःतत्त्व का, मौज का स्थान। आहा..हा..! भगवान का अन्तःतत्त्व, उस क्षेत्र में से तो आनन्द उपजे, ऐसा वह क्षेत्र है, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प तो दुःख हैं। दुःख उत्पन्न होने का यह स्थान नहीं है। आहा..हा..! आनन्द की उत्पत्ति का भूमिस्थान, अतीन्द्रिय आनन्द की उत्पत्ति का क्षेत्र-स्थान। समझ में आया? **जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** भगवान अपना आत्मा,

निज शुद्धजीव अस्ति। जीव है और काय। असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का धामरूप एक द्रव्य। देखो! यहाँ द्रव्य लिया है। वहाँ परमात्मतत्त्व लिया था। यहाँ भी शुद्ध अन्तःतत्त्व और शुद्ध जीवास्तिकाय। ऐसा कहकर द्रव्य में से उत्पन्न होता है, ऐसा लिया है। गुण में से या भेद से उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। **उससे उत्पन्न होनेवाला...** शुद्ध जीवास्तिकाय, जो निज अन्तःतत्त्व, जो निज अतीन्द्रिय आनन्द की मौज का, उत्पत्ति का भूमिस्थान, ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय वस्तु, **उससे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान,...** भाषा देखो! **परम श्रद्धान, वही दर्शन है।** यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान शब्द है न, भाई? श्रद्धान शब्द है। यहाँ शब्द **परम श्रद्धान, वही दर्शन है।** उसे सम्यक्त्व कहते हैं। आहा..हा..! कहो, समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, नौ तत्त्व की श्रद्धा करना, वह सम्यक्त्व नहीं है। समझ में आया? 'कारण गणि प्रत्यक्ष'-श्रीमद् में आता है, वह तो व्यवहार कहा है, परमार्थ नहीं। 'स्वच्छन्द मत आग्रह तजि, वर्ते सद्गुरु लक्ष, समकित तेने भाखियो कारण गणि प्रत्यक्ष।' खड़े रहने के लिये बात की है। वह सम्यक्त्व नहीं है। ऐई! आहा..हा..! यहाँ तो इसकी श्रद्धा है, उसका ज्ञान करना। उनका भी आश्रय छोड़कर।

निज शुद्ध जीवास्तिकाय,... भगवान आत्मा अस्ति, सत्तारूप अस्तित्ववाला पदार्थ और असंख्यप्रदेशी काय है वह तो। असंख्यप्रदेशी उसकी काय है। असंख्य प्रदेश उसका शरीर है। समझ में आया? जो श्रीमद् में आता है 'शुद्धबुद्ध चैतन्यघन।' उस चैतन्यघन को प्रदेश में डाला है। असंख्यप्रदेश का पिण्ड, उसे चैतन्यघन कहा है। समझ में आया? और स्थान कहा है न? स्थान कहा, इसलिए फिर क्षेत्र शामिल डाला। अस्तिकाय। आहा..हा..!

निज... निज शब्द जहाँ-तहाँ प्रयोग किया है। कोई दूसरे परमात्मा नहीं ले लेवे। दूसरे का-सर्वज्ञ का, अरिहन्त का, सिद्ध का आत्मा - ऐसा कोई न ले लेवे। आहा..हा..! कितनी धीरज चाहिए इसमें? ऐई! देवानुप्रिया। कल समुद्र का दृष्टान्त दिया था न? प्रकाशदासजी! पानी-पानी। भरपूर समुद्र। सली डुबोकर वह समुद्र खाली करना। धीरज चाहिए।

मुमुक्षु : धीरज जितनी गम्भीरता चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्भीर और धीरज चाहिए। एकदम उतावल से ऐसा हो जाये... ऐसा हो जाये... ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा **नज शुद्ध जीवास्तिकाय, उससे उत्पन्न होनेवाला....** देखो! यह सम्यग्दर्शन पर्याय है। शुद्ध जीवास्तिकाय उत्पन्न नहीं होता। वह तो है। समझ में आया? **उससे उत्पन्न होनेवाला...** जीवास्तिकाय से उत्पन्न होनेवाला, ऐसा। निमित्त से नहीं, विकल्प से नहीं, पर्याय से नहीं। आहा..हा..! दिगम्बर सन्तों की वाणी। दिगम्बर सन्त परमात्मा! अनादि सनातन पन्थ है। वह कोई कल्पित या ऐसा है और वैसा, इसके साथ में दूसरे के साथ इसकी तुलना (करने) जाये तो मेल खाये, ऐसा नहीं है। दूसरों के साथ तुलना... आया था या नहीं? किसमें आया था? रमेश में। वह सब व्याख्यान में आया था 'मारग जुदा जगत थी सन्त ना रे लोल जगत साथे मिढवणी नव थाय। सन्त पंथ जगपंथ थी जुदा जाण जो रे लोल। संत पंथ जगपंथ थी जुदा जाण जो रे लोल। जगत साथे मिढवणी न थाय। जगत साथ मिढवाणी नव थाय।' किसी के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सत्य को असत्य के साथ किस प्रकार मेल हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : संत पंथ जगपंथ थी जुदा जाण जो रे लोल। आज पत्र पाया है? नहीं आया। याद नहीं... 'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लोल। सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या।' अरे! भगवान आत्मा में चैतन्य समुद्र भरा है। वहाँ मृग प्यासे घूमते हैं। 'दौड़े हांफी झांझवां जलने रे काज।' यह विकल्प और पर की पर्याय में खोजने जाये, मुझे उसमें से समकित होगा। 'दौड़े हांफी झांझवां जलने रे काज।' अरे रे! 'सांचा वारि ऐने ना मले रे लोल। अरे रे सच्चा पानी रे उसे नहीं मिले रे।' अच्छा पानी नहीं मिले। मृगतृष्णा का पानी। खारी जमीन को सूर्य की किरण का स्पर्श होने पर पानी जैसा दिखाव लगता है। (वहाँ) पानी नहीं, बापू! तेरी तृषा नहीं मिटेगी। समझ में आया? आहा..हा..! व्याख्यान में से, वह शीघ्र कवि है। हमारे प्रेमचन्दभाई का पौत्र है। आहा..हा..! रचा है सब व्याख्यान में से। आहा..हा..! ऐसी बात कहाँ है? किसके पास है कि दूसरे के साथ तुलना करे? आहा..हा..!

अणुव्रत और महाव्रत तथा उनका प्रचार, वह धर्म। अरे! भगवान! तूने क्या किया? भाई! इस परिणाम में, बापू! गहरे जल में-भव में जाना पड़ेगा, भाई! इस भव का अन्त वहाँ नहीं है। आहा..हा..! भव के अन्त का किनारा तो अन्दर जीवास्तिकाय तत्त्व है। समझ में

आया ? यह दुनिया माने और दुनिया प्रसन्न हो और दुनिया अभिनन्दन दे, उसमें कुछ भला हो, ऐसा नहीं है। यह कोई गिरवी रखा जाये, ऐसा नहीं है कि मुझे बहुत मानते थे और बहुत महिमा करते थे, इसलिए कुछ तो हमारे में होगा या नहीं ? आहा..हा.. ! भगवान ! तुझमें तो सब ही है, कुछ क्या ? परन्तु कहाँ ? अपने जीवास्तिकाय पदार्थ में सब है। आहा..हा.. !

उससे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान, वही दर्शन है। वापस उसी में रखकर। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : परम अवगाढ़ सम्यक्त्व कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह सब परम है, अवगाढ़ ही है सम्यक्त्व। परम शब्द में आया है न ! सबको परम शब्द प्रयोग किया जाता है। कहो, समझ में आया ? वह परम क्या ? वह परम होकर परमात्मा हो जानेवाला है उसमें से। गिरने की बात नहीं है, वापिस फिरने की बात नहीं है। अफरगामी चले जिस पंथ में गये, उस पंथ को उसने पूरा किया। नवरंगभाई ! कायर का तो कलेजा काँप उठै, ऐसी बातें हैं। आहा..हा.. ! वीर की बातें भीतर तीर-भाले के समान उतर जाती हैं। आहा..हा.. !

भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप से भरपूर भगवान की दृष्टि होने पर। वह उपजता अर्थात् पर्यायरूप से नया होता है। वह तत्त्वार्थश्रद्धान, वह परमश्रद्धान समकित है। समझ में आया ? वह भी भगवान ने कहा हुआ जीवास्तिकाय। दूसरे जीव... जीव करे और आत्मा.. आत्मा करके बात करे, उसके साथ कुछ मेल खाये, ऐसा नहीं है - ऐसी बात है। पृथक् पड़कर, पर से पृथक् पड़े, तब अन्दर जाये ऐसा है। दो बोल हुए।

तीसरा बोल। चारित्र किसे कहना ? **निश्चयज्ञानदर्शनात्मक...** भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन। जानने-देखने के स्वभावसहित। सामान्य दर्शन, विशेष ज्ञान—ऐसी शक्तिवाला तत्त्व। निज निश्चय। जानना और दर्शनस्वरूप वह तो है। ऐसा कारणपरमात्मा है। उस परमात्मा का स्वभाव पहले वर्णन किया। वह तो निश्चय ज्ञानदर्शनस्वरूप, वह कारणपरमात्मा है। पहले में निज परमतत्त्व कहा था; दूसरे में अन्तःतत्त्व और शुद्ध जीवास्तिकाय कहा। यहाँ कारणपरमात्मा लिया। भाई ! वस्तु एक की एक है। भगवान कारणपरमात्मा ! कारणपरमात्मा किसे कहते हैं ? समझ में आया ? कारण निश्चय जो ज्ञान और दर्शन, जानने और देखने के स्वभावस्वरूप, ऐसा कारणपरमात्मा ध्रुव, नित्य, सामान्य, एकरूप

ज्ञायकभाव, वह कारणपरमात्मा है। जिसके कारण से मोक्ष का कार्य प्रगट हो, उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहा जाता है। समझ में आया?

(३) निश्चयज्ञानदर्शनात्मक कारणपरमात्मा में... अन्तर शुद्धचैतन्यघन भगवान आनन्द का अतीन्द्रिय धामस्वरूप, ऐसा **कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति...** चलित न हो, ऐसी स्थिति। **(निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है।** वही चारित्र है। व्यवहार के परिणाम और विकल्प, वह चारित्र नहीं है। आहा..हा..! वे तो पंच महाव्रत अर्थात् अध्यात्म हो गया, त्याग हो गया जिसे। अध्यात्म का दूसरा... हमारा अध्यात्म आता है। अरे भगवान! क्या हो? जगत के प्राणी को योग्यता न हो तो उपदेश भी नहीं मिलता। यह तो परमात्मा के पंथ में पड़ने का मार्ग है। यह कहीं कायर का काम नहीं है। आहा..हा..! अरे! हमारे साथ कोई हाँ पाड़नेवाला नहीं मिलता। अकेला जा न! उसमें नहीं आता। अकेला जा न तू एक... कहीं पुस्तक में आता है।

मुमुक्षु : जन्म-मरण में तुझे किसी का साथ नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझे कोई साथ नहीं हो तो अकेला जा न! आनन्दघनजी भी कहते हैं। तुझे कोई न साथ। 'दीठो दिठाय करि मार्ग पंथ, तेनूं कोई... अभिनन्दन जिनदर्शन तरसिये,....' कोई शाबासी करके थपकी दे कि वाह! तेरा मार्ग, ऐसा कोई मिलता नहीं, कहते हैं। मुझे क्या करना? 'धिठाय करि...' मेरे मार्ग में मैं हूँ, दुनिया चाहे जा माने। प्रेमचन्दभाई! आनन्दघनजी में आता है। 'दर्शन दर्शन दोह्यलो' आहा..हा..!

कहते हैं, अविचल स्थिति। आहा..हा..! ध्रुव भगवान आत्मा में चलित नहीं हो, ऐसी रमणता-स्थिति को यहाँ चारित्र कहते हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! लो, यह चारित्र। आहा..हा..! यह तो कहे पंच महाव्रत पालो, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहपना। यह भी वापस उसका माना हुआ। आहा..हा..! हम चारित्री हुए हैं और हमारे चारित्र, वह धर्म है। यह हमारा अध्यात्मधर्म है, वापस ऐसा कहे। ये शब्द वह तुलसी प्रयोग करता है। यह अध्यात्ममार्ग है, ऐसा कहे। अरे! अध्यात्म किसे कहना? भाई! बाह्य त्याग नहीं और प्रवृत्ति हो न।

मुमुक्षु : विश्व कल्याण....

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्व कल्याण। आत्मा का नहीं न?

कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति... अन्दर भगवान आनन्द का धाम प्रभु अतीन्द्रिय रस की कातली आत्मा, उसमें निश्चलपने की लीनता को भगवान चारित्र कहते हैं। यह चारित्र मोक्ष का कारण है। देह की क्रिया नहीं, पंच महाव्रत के विकल्प, वे कहीं चारित्र नहीं और वे मोक्ष का कारण है नहीं।

मुमुक्षु : 'चारित्तं खलु धम्मो' वह चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : .....ऐसा यह है। धारकर क्या है? 'दंसण मूलो धम्मो'। चारित्र है। धर्म वह चारित्र है। चारित्र का मूल दर्शन है।

मुमुक्षु : कौन सा चारित्र, यह हमारे विचारना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या विचारे? वह चारित्र यह। तुम्हारे विचारने का क्या है?

मुमुक्षु : पंच महाव्रत....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे चारित्र किसने कहा? उसके लिये तो बात चलती है। तिखल... है। नारद है न। समझता है कि पंच महाव्रत चारित्र नहीं। परन्तु हमारे समझने का कुछ? हमारे समझने का अर्थात् क्या? यही चारित्र है। पंच महाव्रत के विकल्प भी मुनि को होते अवश्य हैं, वह चारित्र नहीं है। निश्चयचारित्र ऐसा हो, वहाँ पूर्णदशा न हो और पंच महाव्रत के विकल्प आवें, परन्तु वे तो बन्ध का कारण है; चारित्र नहीं। कहो, समझ में आया? तीनों सम्प्रदाय में इसकी तो बड़ी गड़बड़ी है। आहा..हा..! महाव्रतधारी हैं, भाई! महाव्रतधारी हैं। किसके महाव्रतधारी? कहाँ थे? महाव्रतधारी किसे कहना, यह अभी खबर नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? लो, यह तीन की व्याख्या हुई—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की (व्याख्या हुई)।

ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम... लो, नियमसार है न यह? **ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम...** देखो! तीन का एक कह दिया। वह **निर्वाण का कारण है।** वह मोक्ष का कारण है। नीचे है न, २ (नम्बर)। **कारण जैसा ही कार्य होता है,...** है न नोट। **इसलिए स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास ही....** स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास, अतीन्द्रिय आनन्द भगवान में रमने का अभ्यास **वास्तव में अनन्त काल तक स्वरूप में स्थिर रह जाने का उपाय है।** अन्तर आनन्द में स्थिर होना। फिर वह अनन्त काल स्थिर हो जायेगा। अनन्त काल स्थिर होने का यह उपाय है। समझ में आया?

उस 'नियम' शब्द को... अब सार की व्याख्या करते हैं। यह नियम की व्याख्या की। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र यह नियम है। अब इसे नियम 'सार' शब्द क्यों कहा? **विपरीत के परिहार हेतु 'सार' शब्द जोड़ा गया है।** नीचे तीन (अंक) **विपरीत=विरुद्ध। (व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को-पराश्रितभावों को छोड़कर,...)** क्योंकि वे विपरीत हैं। इसके बदले कितने ही विपरीत का अर्थ मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र करते हैं परन्तु बहुत जगह अन्दर आगे आया है कि निश्चय से व्यवहार विपरीत है। समझ में आया? अन्दर में बहुत जगह (आया है)। एक हिम्मतभाई ने स्पष्ट बात रखी है।

(व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को-पराश्रित...) है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह राग है, शास्त्र का ज्ञान, वह राग / विकल्प है और पंच महाव्रत के विकल्प वे भी राग हैं। ऐसे जो व्यवहाररत्नत्रयस्वरूप भेद, **(पराश्रितभावों को छोड़कर,...)** वह नहीं, व्यवहार नहीं। व्यवहार, मोक्षमार्ग है नहीं। **(मात्र निर्विकल्प ज्ञानदर्शनचारित्र का ही-शुद्धरत्नत्रय का ही-स्वीकार करने हेतु....)** लो, ठीक। मात्र निर्विकल्प—रागरहित, विकल्परहित—वस्तु के स्वरूप की वीतरागी निर्विकल्पदशा, ऐसा जो निर्विकल्पज्ञान, निर्विकल्पदर्शन और निर्विकल्पचारित्र का ही। अर्थात् कि **(शुद्धरत्नत्रय का ही...)** ऐसा। निर्विकल्प ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहो या शुद्धरत्नत्रय कहो। **(स्वीकार करने हेतु....)** यही मोक्ष का मार्ग है। **('नियम' के साथ 'सार' शब्द जोड़ा है।)** पाठ में है न, **विपरीतपरिहारार्थं भणितं खलु सारमिति वचनम्।** समझ में आया? इसमें भी बड़ा विवाद। विपरीत के बहुत अर्थ आयेंगे। निश्चय अर्थ से व्यवहार विपरीत है। निश्चयरत्नत्रय से व्यवहार रत्नत्रय विपरीत है। आवश्यक, क्रिया ऐसे बहुत बोल हैं। इसमें लिखे हैं। १७६, १४९, १७५ बहुत थे। यह तो मैंने ४३, ८२, ८६, ९७। यहाँ तो अपने एक का काम है न। सब बहुत बोल लिखे हैं।

निश्चय और व्यवहार विरुद्ध हैं। नहीं तो दो भेद कैसे पड़े? इसका फल भी विरुद्ध है। निश्चयरत्नत्रय का फल मोक्ष है और व्यवहार का फल बन्ध है। निश्चयरत्नत्रय निर्विकल्पदशा है और व्यवहार, वह राग है। राग, बन्धन का कारण है। निर्विकल्पदशा, मोक्ष का कारण है। आहा..हा..! इसलिए व्यवहार को रद्द करने के लिये **'सार' शब्द जोड़ा गया है।**

इसका कलशा कहेंगे, लो। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)